ज्ञान का बदलता स्वरूप और शिक्षा की समस्या*

दयाकृष्ण

आज के समय में जबकि शिक्षा का बाज़ारीकरण हो रहा है, बाज़ार की सेवा के लिए तमाम पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं। शिक्षा अदद नौकरी का ज़रिया बन गई है, ऐसे समय में प्रो. दयाकृष्ण का यह व्याख्यान शिक्षा के संदर्भ में अंतर्दृष्टि प्रदान करता है कि शिक्षा द्वारा सिर्फ़ ज्ञान, सूचनाएँ और बुद्धिमता अर्जित करना ही नहीं है बल्कि गंभीरता, प्रतिबद्धता, ईमानदारी, सहयोग एवं अन्य केंद्रित चेतना अर्जित करना भी है। इस व्याख्यान में कहा गया है कि सही और गलत का फ़र्क तथा ज्ञान स्थिर नहीं है। ऐसे में विद्यार्थी को इस फ़र्क, जो कि है, के प्रति चेतन एवं संवेदनशील किया जा सकता है। विद्यार्थी इसे चिन्तन एवं स्व-प्रयत्न से अर्जित कर सकता है। इस फ़र्क का बोध एवं सार्थक जीवन जीने की इच्छा पैदा करना शिक्षा का उद्देश्य हो सकता है।

इस व्याख्यान की शुरुआत तीन सवालों से करते हैं। मेरा पहला सवाल है, चिन्तन का उस विषय से क्या संबंध है जिस पर चिन्तन किया जा रहा है? हम यहाँ शिक्षा या सीखने-सिखाने के काम पर चर्चा या चिन्तन करने के प्रयास के लिए एकत्रित हुए हैं। लेकिन यह चिन्तन है किसके बारे में? मैं स्वयं, औपचारिक और अनौपचारिक रूप से, शिक्षक रहा हूँ। जब हम पढ़ा करते थे, कॉलेज में, तब भी पढ़ाया करते थे दोस्तों को, विद्यार्थियों को। लेकिन इस पर जो चिन्तन है, सोचना है, वह क्या है? मैं एक आधारभूत सवाल उठाना चाहता हूँ – हम सिर्फ़ शिक्षा पर ही चिन्तन नहीं करते हैं, हम सभी चीज़ों पर चिन्तन करते हैं। हम चिन्तन करते हैं ज़िंदगी के मायने क्या हैं? ब्रह्मांड क्या है? ज्ञान क्या है? शुभ क्या है? सौंदर्य क्या है? हम सभी चीज़ों पर चिन्तन करते हैं। इस चिन्तन को दार्शनिक चिन्तन कहते हैं।

इस सोचने का क्या कोई असर होता है? बड़े-बड़े लोग जिनका नाम लेते ही हमारा सिर झुक जाता है, दिल में श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है, उन लोगों ने क्या कहा, क्या नहीं कहा आदमी के लिए? क्या उनके विचार से, उनकी प्रज्ञा से, उनकी बुद्धि से मनुष्य पर प्रभाव पड़ा? क्या ज्ञान पर चिन्तन से ज्ञान बदलता है? क्या ज़िन्दगी पर चिन्तन से ज़िंदगी बदलती है? क्या किसी भी चीज़ पर चिन्तन, जिस पर चिन्तन किया जा रहा है, उस चीज़ को बदलता है जिस पर चिन्तन किया जा रहा है? यह मेरा पहला सवाल है। मेरा

*प्रस्तुत आलेख *शिक्षा विमर्श* शैक्षिक चिंतन एवं संवाद की पत्रिका, वर्ष-8 अंक-4 जुलाई-अगस्त, 2006 से साभार प्रकाशित है।

दूसरा सवाल है, ये चिन्तन जो किया जा रहा है वह एक जड़वत अतीत पर किया जा रहा है न कि जीवंत वर्तमान या उस पर जो कि भविष्य में आने वाला है। हम जिस पर भी विचार करते हैं, जब भी विचार करते हैं, उस पर विचार करते हैं, जो बन चुका है, जो हो चुका है, जो हमको पढ़ाया गया है, जो किताबों में लिखा हुआ है। यह चिन्तन, जो हमारे चारों तरफ़ है, उस पर नहीं है। यह चिन्तन हमारे अपने अनुभव पर नहीं है, किताबी अनुभव पर है।

हम अनुभव के बारे में बात करते हैं लेकिन स्वयं के अनुभव पर चिन्तन नहीं करते हैं। हम उस अनुभव पर चिन्तन करते हैं जिसे अतीत में विचारबद्ध किया गया है या उस पर जो कि हमारे सामने किताबों ने या परंपरा ने प्रस्तुत किया है और जिसके कि प्राण निकल चुके हैं। हम प्राणहीन चीज़ पर चिन्तन कर रहे हैं। किसी ने क्या कहा, कब कहा, कहाँ कहा, उसको दोहराते रहते हैं। नाम बड़े-बड़े हैं, लोग बड़े-बड़े हैं, और हम करें भी क्या? हर क्षेत्र में सोचने के बारे में सोचने की जो कहानी है 'ऐतिहासिक' है 'टेम्पोरल' है और जब हम सोचते हैं या पढ़ाने का प्रयास करते हैं तो हम यही पढ़ा रहे होते हैं, इतिहास पढ़ा रहे होते हैं। लेकिन ये जो इतिहास है वह तो पहले ही अतीत बन चुका है।

मैं यह सवाल इसलिए उठा रहा हूँ क्योंकि यह एक बड़ा सवाल है और यह सिर्फ़ शिक्षा से ही संबंधित नहीं है। मेरा चिन्तन उसे कैसे प्रभावित कर सकता है जो घट रहा है? क्या घट रहा है? अगर आपको आज के संदर्भ में सीखने की बात, शिक्षा की बात करनी है तो मैं समझता हूँ अखबार उठाकर देखिए। अंग्रेज़ी के अखबार उठाइए तो आपको एक बात नज़र आएगी। मैं आपको न सिर्फ़ देखने के लिए या चिन्तन के लिए बल्कि शोध करने के लिए आमंत्रित कर रहा हूँ। किसी भी अंग्रेज़ी अखबार को ले लीजिए जैसे कि हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया, इण्डियन एक्सप्रेस, द हिन्दू; दिल्ली से निकलने वाले किसी भी दैनिक समाचार पत्र को ले लीजिए। उसके शिक्षा वाले भाग को या 'अवसरों' वाले भाग को देखिए। आपकी आँखें खुल जाएँगी। आजकल खुल रहे नए विश्वविद्यालयों पर एक नज़र डालिए। ये जो नए खुले विश्वविद्यालय हैं या डीम्ड शैक्षणिक संस्थान हैं, ये क्या पढ़ा रहे हैं? कोई भी जो शिक्षा से सरोकार रखता है उसे थोड़ा झटका लगेगा और आप समझ नहीं पाएँगे कि कितने ही कॉलेजों को बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन या एमबीए कोर्सेज पढ़ाने के लिए ऑथोराइज किया गया है। अगर आप थोड़ा और जानना चाहते हैं तो जाकर युवा पीढ़ी से बात करिए, उनसे बात करिए जो दसवीं कक्षा में पढ़ रहे हैं या 11वीं, 12वीं में जाने वाले हैं, जिसे कि हायर सेकेंडरी कहते हैं। वो कौन से विकल्प हैं जिसे वे चुनेंगे? वे जूझ रहे हैं। वे ही सचमुच शिक्षा के इस द्वन्द्व का सामना कर रहे हैं, न कि मैं, आप या कोई भी जो यहाँ बैठा हुआ है। क्या हमें साइंस लेना चाहिए, कॉमर्स लेना चाहिए, जीव विज्ञान या आर्ट्स लेना चाहिए? ये विकल्प हमारे सामने हैं लेकिन हम कॉमर्स चुनते हैं।

आप इसकी कल्पना करने की कोशिश कीजिए, चाहे लड़के हों या लड़कियाँ, वे और उनके मित्र कहते हैं – भविष्य किसमें है कामर्स में। अब कॉमर्स में भविष्य है! जहाँ शिक्षा का मतलब कॉमर्स में भविष्य देखना है, एमबीए में

भविष्य देखना है, वहाँ शिक्षा की भूमिका बदल रही है। शिक्षा का स्वरूप बदल रहा है। शिक्षा का अर्थ बदल रहा है। और अपने चारों तरफ़ देखिए, अचानक कोटा मशहूर हो गया है। कभी भी कोटा कोई महान शैक्षिक केंद्र नहीं था। लेकिन मुझे बताया गया है कि ये एक राष्ट्रीय स्तर का केंद्र बन चुका है जहाँ लोग अपने खर्चे पर आकर रहते हैं और यह सीखते हैं कि प्रतियोगी परीक्षाओं में कैसे पास हुआ जाता है। हम इसे शिक्षा की दुकान कहते हैं। ये शिक्षा की दुकान ही हैं लेकिन यही तो हम चाहते हैं। किस तरह की शिक्षा की मांग है, और क्या करें इसी तरह की ज़रूरत लगातार बढ़ती जा रही है। आँकड़े अविश्वसनीय और अकल्पनीय हैं। आप मेरे दोस्त की बेटी से पूछिए, ''क्या पढ़ रही हो?'' ''हम फैशन डिज़ाइनिंग कर रहे हैं।'' मैं फैशन के खिलाफ़ नहीं हूँ। मेरे खयाल से महिला और पुरुष सुंदर दिखते हैं, पहले की तुलना में इस फ़ैशन डिज़ाइनिंग के साथ और भी सुंदर दिखते हैं। ब्यूटी पार्लर आजकल सब जगह, यहाँ तक कि छोटे कस्बों में भी, खुल रहे हैं। औरतें अपनी सौंदर्य वृद्धि के लिए इन पार्लरों में जाती हैं। बहुत अच्छी बात है लेकिन सामान्यत: हम शिक्षा के बारे में अलग तरह से सोचते थे। पर ये चिन्तन का विषय होना चाहिए। शल्य जी के लड़के की लड़की ने एम.ए. साहित्य में किया है। साहित्य सम्मानजनक है। मैने पूछा–''अब क्या करेगी? मीडिया करेगी।'' मेरे कान खुल गए। मैंने सोचा ये लड़की समझती है कि भविष्य मीडिया में है। और मीडिया क्या है? अखबार को उठाकर खोलिए, टी.वी. खोलिए। आपको पता चल जाएगा मीडिया क्या है। अखबारों को आप पढ़ नहीं सकते। यह मीडिया है। अब अखबार को देखिए, कितने पेज खेल पर हैं, कितने बिजनेस पर हैं, कितने विज्ञापनों पर, और कितने बेचारे खबरों पर और कितने खबरों के विश्लेषण पर हैं? यह सच्चाई है जिसका आप सामना करते हैं। 'द हिन्दू' को छोड़कर, जिसे वैसे भी आजकल बहुत कम लोग खरीदते हैं, क्या कोई ऐसा अखबार है जो पढ़ने लायक है? मैं यह तथ्य आपके सोचने को दे रहा हूँ क्योंकि यही इस वर्तमान का जीवंत यथार्थ है।

अब मैं ध्यान थोड़े अमूर्त स्तर पर ले जाता हूँ। एक ऐसा स्तर जहाँ जो हो रहा है वह और भी ज़्यादा विध्वंसकारी है। यह उस दृष्टिकोण से विनाशकारी है जिसे हम शिक्षा कहते हैं या कहते थे। शिक्षा को हम – हालाँकि यह स्वयं को भ्रमित करने जैसा था सत्य की खोज, ज्ञान की खोज, वस्तुनिष्ठता की खोज, आत्मनिष्ठता से स्वयं को बाहर निकालकर जो जैसा है उसे वैसा देखने का ज़रिया मानते थे। अब ज्ञान को लेकर जो विचार है उसके अनुसार ज्ञान को खोजा नहीं जा सकता बल्कि ज्ञान बनाया जाता है। ज्ञान एक ऐसी भोग्य वस्तु है जिसका उत्पादन किया जा सकता है। ये एक आधारभूत परिवर्तन है जो हमारे आस-पास घट रहा है और जिसके बारे में हमें जागरूक होना चाहिए। ज्ञान अब ऐसी चीज़ नहीं रही जिसे कि कड़ी मेहनत से ढूंढ़ा जाता था। ऐसा कुछ जो कि है, होने, न होने का सच। ज्ञान जिसे कि सृजित किया जाता है और आप सब जानते हैं कि ज्ञान किसलिए? अगर आप लोग कभी देखते हों, यह वास्तविक द्वन्द्व है। मुझे इसके बारे में कहने दीजिए, बृहस्पतिवार को 'द हिन्दू' के साइंस सेक्शन में पहले या तो वैज्ञानिकों के जीवन के बारे में कुछ बताया जाता था जिससे

कि आप उनके बारे में जान सकें या फिर महान खोजों के बारे में बताया जाता था ताकि आप वैज्ञानिकों के जीवन के ज़रिए उन खोजों के या जो भी नवीनतम विज्ञान में हो रहा है, उसके बारे में जान सकें।

अब यह सिर्फ़ एप्लाइड विज्ञान से ही संबंधित होता है। किस फ़सल में क्या कीड़ा लगा हुआ है और इस कीड़े का क्या करें? मैं एप्लाइड विज्ञान की जबरदस्त उपयोगिता से इंकार नहीं करता हूँ लेकिन यदि एप्लाइड विज्ञान स्वयं विज्ञान बन जाए, न कि जिसे एप्लाई किया जाता है तो ये मेरे ज्ञान के दृष्टिकोण में और विज्ञान के दृष्टिकोण में एक बदलाव है। ज्ञान की संकल्पना में ही बदलाव है, कि ज्ञान को मनुष्य की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए सृजित किया जाता है। ज्ञान मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने का ज़रिया मात्र है। लेकिन मनुष्य की ज़रूरतें क्या हैं? हमारे यहाँ पहले कहा गया है कि मनुष्य क्या है, काम है, अर्थ है। मनुष्य कामनायुक्त प्राणी है। वह क्या चाहता है? वह खुशी चाहता है, आनन्द चाहता है। सारे अखबार 'काम' से भरे हुए हैं। आप फोटो देखिए सिर्फ़ काम मिलता है। भारतीय कला काम पर केंद्रित ही नहीं बल्कि काम से परिपूर्ण रही है। हमारा साहित्य, हमारी कला, हमारी पेन्टिंग्स, राजस्थान की मीनिएचर पेन्टिंग्स, पहाड़ी पेन्टिंग्स – इनका विषय (Theme) कृष्ण का प्रेम रहा है। मूर्तिकला को देखिए, शायद ही हिन्दुस्तान में एक भी मन्दिर ऐसा हो जो खुले तौर पर उसे प्रदर्शित न करता हो जिसे हम सैक्स कहते हैं। हम आश्चर्यचकित होते हैं, कुछ को तो सदमा भी लगता है लेकिन आज जब हम अपने अख़बारों के पन्नों में और टी.वी. सीरियल में इसका खुला प्रदर्शन देखते हैं तो पीड़ा होती है। यह हममें उस प्रवृत्ति को जन्म देते हैं जिसकी परिणति हिंसा है, युद्ध है, सैक्स है।

युद्ध सिर्फ़ इराक में नहीं लड़ा जाता। युद्ध केवल हिन्दुस्तान के उत्तरपूर्वी हिस्सों या कश्मीर में ही नहीं है। यदि आप अखबार खोलें तो आपका सामना ऐसी खबरों से होता ही है जहाँ जानते बूझते किसी विचारधारा के नाम पर या बिना विचारधारा के भी लोगों को मारा जा रहा है। अमेरिका में एक युवा विद्यार्थी ने पिस्तौल लेकर अपने दोस्तों पर अंधाधुंध गोलियाँ चलाईं। इसके बारे में जो वास्तविक संख्यात्मक आँकड़े हैं वे बिलकुल अविश्वसनीय हैं। ये हिंसा है, व्यवस्थित हिंसा है। पूरी दुनिया के मत के खिलाफ़ भी अमेरिका ने इराक से युद्ध किया। सुरक्षा परिषद् के मत के खिलाफ़, हर किसी के मत के खिलाफ़। हाल ही में जो लेबनान में हुआ वह पुनः इसका स्मरण कराता है। ये ज्ञान जिसे हम ज्ञान कहते हैं, वह मुक्ति के लिए नहीं है, न्याय के लिए नहीं है और न ही गरीबी से निजात दिलाने के लिए है। ये ज्ञान जिसका सृजन किया जा रहा है मनुष्य की कुछ मुख्य ज़रूरतें जैसे कि, व्यवस्थित विध्वंस या हिंसा को बढ़ाने में मदद कर रहा है। ऐसा सुख जिसकी जड़ें वहाँ हों जिसे हम निकृष्ट किस्म का ऐन्द्रिक कहते हैं, यही है जो ग्लोबलाइज़ेशन को निर्मित करता है। ऐसे सामान और सेवाओं का बहुतायत में उत्पादन जिसकी हमें ज़रूरत नहीं है, जो प्रदूषण फैला रहे हैं और जो वर्तमान के हर एक दृष्टिकोण से विध्वंसकारी है। यह तथ्य है।

आँकड़ों के बाद आँकड़े, यहाँ से नहीं बल्कि पश्चिमी देशों जैसे कि अमेरिका से प्रकाशित न जाने कितनी ही किताबें विलुप्त हो रही प्रजातियों

के बारे में लिखी जा रही हैं। समय कम है, हर कोई चेतावनी दे रहा है। कल्पना करिए एक महान वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिन्स की यह एक मार्मिक कहानी है, कृपया इस पर सोचें, उन्होंने इन्टरनेट पर एक सवाल पूछा। आजकल लोग इन्टरनेट पर सवाल पूछते हैं। लेकिन यहाँ एक महान वैज्ञानिक इन्टरनेट पर लोगों से सवाल पूछ रहा है। उन्होंने पूछा–'आने वाले सौ सालों में मानवता का भविष्य क्या है? वे चिंतित हैं और अन्य सब भी चिंतित हैं। सारे जवाबों को देखने के बाद लोग उनसे ये चाहते थे कि वे जवाब दें। उन्होंने कहा–''मुझे नहीं पता इसीलिए तो मैंने सवाल पूछा था।'' ये सवाल इतना आवश्यक बन चुका है कि बड़े-बड़े लोग इसे पूछने लगे हैं। देरिदा (फ्रांसीसी दार्शनिक) की ओर जाते हैं। वो देरिदा जो कि हर तरह के विचार की नींव को, ज्ञान की खोज को या किसी भी चीज़ के बारे में दावों को तोड़ने के लिए ज़िम्मेदार हैं। ये उत्तर आधुनिकतावादी हैं। उसे किताब लिखनी पड़ी, जिसे विश्वविद्यालय की आँख कहते हैं - राइट टू फिलॉसफी। इसका क्या आशय है? विश्वविद्यालय की आँखें अंधी हो रही हैं। विश्वविद्यालय अब विश्वविद्यालय नहीं रहे। वे अब उसका हिस्सा हैं जिसे हम इन्डस्ट्रियल कॉम्प्लैक्स कहते हैं। शोध के लिए अनुदान कौन दे रहा है? कहाँ से दे रहा है और किसलिए दे रहा है? ज्ञान का वैश्वीकरण क्यों हो रहा है और ये क्यों लगता है? अगर बुद्धिजीवी उन विषयों पर शोध करने के लिए, जिसके लिए उन्हें अनुदान मिल रहा है, अपने आपको बेच सकते हैं तो ये क्यों गलत है? ये सिर्फ़ ज्ञान नहीं है कि ज्ञान का तकनीक में रूपांतरण किया जाना है, कि आत्मचेतन अवस्था में ज्ञान उस तरह के ज्ञान के उत्पादन के लिए माध्यम बनाया जाता है जिसको कि तकनीक में बदला जा सके। लेकिन तकनीक किसके लिए? हमें तकनीक नहीं चाहिए। तकनीक उत्पादन के लिए? उत्पादन किसके लिए? उत्पादन सेल्स, मार्केटिंग, विज्ञापन के लिए? आपको सामान चाहिए या नहीं, उसे आपके ऊपर थोपा जाएगा और आपको उसके इस्तेमाल के लिए मजबूर किया जा रहा है। अब यही वास्तविकता है और अब यही यथार्थ है। तो हम करें क्या? बैठकर रोने का और शिकायत करने का कोई फ़ायदा नहीं। आपको समझना पड़ेगा कि वर्तमान का जीवंत यथार्थ क्या है? जिसे वे ताकतें आकार दे रही हैं जिन पर हमारा बहुत कम नियंत्रण है। इस संदर्भ में क्या करना चाहिए? मैं वापस आता हूँ ये विषय हमेशा की तरह लम्बा है और समय कम है। लेकिन आपसे मैं अपने कुछ सरोकारों को बाँटना चाहता हूँ। एक बुनियादी द्वन्द्व जिसका सामना कुछ हद तक आप सभी करते होंगे। एक मायने में यह जीवंत यथार्थ है। दूसरे मायने में इस जीवंत यथार्थ को मैं स्वीकार नहीं करता। मैं स्वयं ही अतीत की पैदाइश हूँ। मेरे मन को, वांछनीय और आदर्श के बारे में, मेरे विचारों को, आपकी ही तरह पूर्णतः किसी विपरीत चीज़ ने आकार दिया है।

इस स्थिति में क्या करूं। अब मैं बातचीत के फ़ोकस को थोड़ा बदलता हूँ। ऐसा क्यों होता है कि सभी लोग बार-बार शिक्षा की समस्या की ओर मुखातिब होते हैं? ऐसा क्यों है? उपनिषदों के ज़माने से, जब से उपनयन संस्कार का विचार बना, तब से, विद्यार्थियों को शिक्षक के घर जाना होता था तब से, जब से उपनिषदों में उद्दालक ने श्वेतकेतु से 'तत्वमसि' पूछा तब से, जब से

प्लेटो के संवाद थे तब से, प्लेटो एक दास को गणितीय सत्य पढ़ाने की कोशिश करता है तब से हर जगह मनुष्य का शिक्षा से सरोकार रहा है। क्यों? क्यों कृष्णामूर्ति को ऋषि वैली में शैक्षणिक संस्थान स्थापित करना पड़ा? सिर्फ़ ऋषि वैली ही नहीं बल्कि बाकी सब जगहों पर जैसे इंग्लैण्ड, भारत और बनारस। ऐनीबेसेन्ट ने जो किया वो क्यों किया? टैगोर ने शांतिनिकेतन को क्यों स्थापित किया? शांतिनिकेतन एक शानदार संस्थान है। एक से ज़्यादा अर्थों में शानदार है। वह न केवल कला और विज्ञान का केंद्र रहा बल्कि वे चीन और जापान के प्रति भी जागरूक थे। या आप कल्पना कर सकते हैं कि यही वह देश है जहाँ टैगोर ने बंगाल में एक चीन भवन और एक हिंदी भवन की स्थापना की। शान्तिनिकेतन – विश्वभारती– में एक हिंदी भवन है। एक चाइना भवन भी है और सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि वहाँ एक श्रीनिकेतन भी है। जिसका सरोकार आसपास के गाँव और उनकी समस्याओं से था कि विश्वविद्यालय उनके लिए क्या कर सकता था। ये थी टैगोर की दृष्टि। और वे ऐसी शिक्षा चाहते थे जिसमें विज्ञान, कला, कविता, साहित्य, संगीत, नृत्य, भारत से बाहर की दुनिया के बारे में जागरूकता संसार में उनका योगदान और उससे भी परे विश्वविद्यालय की आसपास के गाँव की संकल्पना के प्रति ज़िम्मेदारी शामिल हो। श्री अरविन्द के बारे में क्या? आश्रम में शिक्षा पर बुनियादी ज़ोर था। चेतना का रूपांतरण, जैसाकि सब जानते हैं कि श्री अरविन्द के विचार आधुनिकता और भविष्य के उन्मुख थे। वे इंकार नहीं करते; उनकी विचारधारा की शुरुआत दो तरह की स्वीकारोक्ति, दो तरह के नकार के विपरीत; संन्यासी का नकार और चार्वाक का भी नकार था। इन्द्रियों का नकार या अति आधुनिक का नकार और उन्होंने न सिर्फ़ ये देखा कि ये एक बुनियादी समस्या है बल्कि ये भी सोचा कि इसे शिक्षा में कैसे रूपांतरित किया जाए। और भी अन्य कहानियाँ हैं, मैं उनमें नहीं जाना चाहता। शिक्षा में विभिन्न प्रयोग क्या दयानन्द सरस्वती ने नहीं किए? वे आमूल परिवर्तनवादियों में भी आमूल परिवर्तनवादी थे। कल्पना करिए उन्होंने उपनिषदों को अस्वीकार किया। क्योंकि उपनिषद वेदों के विपरीत थे। उन्होंने गीता को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने पुराणों को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने लगभग हर उस चीज़ को अस्वीकार कर दिया जिसे एक व्यक्ति के रूप में उन्होंने पढ़ा था। उनके जैसा आदमी अकल्पनीय है। फिर भी वे इसी संस्कृति में जिये और आर्य समाज को रूपान्तरित कर एक शैक्षिक संस्थान बनाया। उन्होंने आंग्ल वैदिक शिक्षा संस्थान बनाया। भारत में शिक्षा की बात की। गांधी जी ने भी बुनियादी शिक्षा को स्वीकार किया।

मनुष्य क्यों वापस शिक्षा की ओर मुखातिब होता है? क्योंकि दुर्भाग्य से मैं वह नहीं हूँ जो मैं होना चाहता हूँ। सौभाग्य से मनुष्य शिक्षित पैदा नहीं हुआ। यदि मनुष्य वैसे पैदा नहीं हुआ होता जैसे कि वह पैदा हुआ, तो शिक्षा की समस्या होती ही नहीं। आपको भाषा सिखानी पड़ती है, आपको चलना सिखाना होता है, घुटनों के बल चलना सिखाना पड़ता है, कपड़े पहनना सिखाना होता है। हम शिक्षा के इस हिस्से को भूल जाते हैं। जब हम शिक्षा के बारे में सोचते हैं तो हम उसे बहुत ही संकीर्ण दायरे में रख देते हैं। जैसे कि शिक्षा सिर्फ़ विश्वविद्यालय, कॉलेजों या फिर स्कूलों में ही

होती हो। जैसे कि इनसे बाहर कोई शिक्षा होती ही नहीं है। वास्तविक शिक्षा बच्चे के स्कूल या कॉलेज जाने से पहले ही शुरू हो जाती है। ये कौन-सी शिक्षा है? हम बार-बार क्यों कहते हैं, क्योंकि हमें पता लगता है कि मनुष्य को जो होना चाहिए, जैसा होना चाहिए, वो वैसा नहीं है। मनुष्य केंद्र में है। मनुष्य ही सब चीज़ों का मापक है। लेकिन इन सभी चीज़ों से उदित होते हुए मनुष्य को कैसे पाया जाए? मनुष्य में ही खोट है। मैं दुनिया को अपनी ऊँचाई के सापेक्ष मापता हूँ। मेरी दस उंगलियाँ हैं। बीस की गणना है, इतने फुट हैं, इतने इंच हैं। लेकिन दुर्भाग्य से जब मैं दुनिया को जानने की कोशिश करता हूँ तो मैं उसे शरीर के सापेक्ष नहीं जानता हूँ। मैं उसे अपने मन के सापेक्ष जानता हूँ। मन क्या है? लेकिन सही और गलत में क्या फ़र्क है? क्या सही को वैसे माने जैसे अरस्तु ने माना? एक, बौद्धिक प्राणी की तरह या एक सामाजिक-राजनैतिक प्राणी की तरह या फिर धर्म के कहे अनुसार। लेकिन धर्म क्या है? मनुष्य की वह कौन-सी योग्यता है जो यह जानने की कोशिश करती है कि धर्म क्या है? शरीर का और इन्द्रियों का विकास, शरीर की शिक्षा—हां। इन्द्रियों की शिक्षा हां।

मन की शिक्षा। मन की शिक्षा क्या है? कामना, कामना कैसे होती है? लेकिन बुद्धि (इन्टलेक्ट) की शिक्षा सही और गलत के बोध की शिक्षा कैसी हो? और उनकी प्रासंगिकता और अप्रासंगिकता भी। यह बहस कैसे समाप्त हो? दोस्तों, दृश्य बहुत बुरा है। शिक्षा का सरोकार शरीर से या मन से, या बुद्धिमता या सही और गलत के बोध से, अच्छाई और बुराई से, सुन्दर और असुन्दर से, सत्य और असत्य से हो सकता और यह भेद करने वाली चेतना क्या है जिसे विवेक कहते हैं? प्रज्ञा, जो कि विवेक से संबंधित है। ये विवेक क्या है? क्या हम इन सिद्धांतों को पढ़ा रहे हैं? यहाँ तक कि ज्ञान भी। सभी शिक्षण सिद्धांत, सभी सीखने के सिद्धांत किसलिए हैं? ईमानदारी। क्या हम परीक्षा में धोखा कर रहे हैं? क्या मैं पढ़ाते वक्त बेईमानी कर रहा हूँ या ईमानदारी बरत रहा हूँ? क्या मेरी चेतना अन्य केंद्रित (other centered), विद्यार्थी केंद्रित है, सीखने वाले पर केंद्रित है? मेरी चेतना क्या है? विद्यार्थी जानता है कि मेरी चेतना कैसी है। उसे पता है कि मैं सचमुच पढ़ा रहा हूँ या धोखा दे रहा हूँ। उसे पता है कि मैं सचमुच उसके व्यक्ति के रूप में विकास में मदद कर रहा हूँ या फिर मैं सिर्फ़ उसे अपना विद्यार्थी बना रहा हूँ। विद्यार्थी को सब पता है। वह बेवकूफ़ नहीं है। ये ही पूरी कहानी है। क्या मैंने स्वयं को सिखाया है? मैंने स्वयं को कैसे सिखाया और मेरे सीखने में सिर्फ़ सूचना अर्जित करना, बुद्धिमता अर्जित करना, ज्ञान अर्जित करना ही केवल शामिल नहीं है बल्कि गंभीरता अर्जित करना, प्रतिबद्धता अर्जित करना, ईमानदारी, सहयोग, अन्य केंद्रित चेतना और स्वयं को सामने वाले व्यक्ति या विद्यार्थी के अनुरूप यानि कल्पना करना भी शामिल है।

मैं अपनी बात यह कहते हुए समाप्त करना चाहूँगा कि इससे आगे सही और गलत में जो फ़र्क है वह स्थिर नहीं है जैसे कि ज्ञान स्थिर नहीं है। मैं आपके साथ दो घटनाओं को लेकर अपने विचार बाँटना चाहता हूँ। पहली जो कि कल शायद आपने पढ़ा होगा, मुझे भरोसा है कि आप सबने अखबार में पढ़ा होगा। लेकिन क्या आपने उस पर चिन्तन किया था ध्यान से पढ़ा?

ऐसा नहीं कि प्लूटो, प्लूटो नहीं रहा। उसका नाम नहीं बदला है। सिर्फ़ उसका वर्गीकरण बदला है। अब इसे एक ग्रह नहीं माना जाता है। पर किसी आधार पर? विज्ञान के इतिहास में सबसे अजीब घटनाओं में से यह एक है। दुनियाभर के खगोलशास्त्री ध्वनिमत के ज़रिए इस फ़ैसले पर पहुँचे हैं। क्या सत्य का फ़ैसला ध्वनिमत से किया जा सकता है? जहाँ तक मैं विज्ञान के इतिहास को जानता हूँ अब तब कभी भी सत्य का फ़ैसला ध्वनिमत से नहीं हुआ। ऐसा कैसे संभव हुआ कि विज्ञान सभा इतनी छोटी हो गई कि ध्वनिमत से फैसला ले! पिछले 50–100 सालों से विज्ञान के क्षेत्र में क्या हो रहा है? ये पूर्णत: चोट पहुँचाने वाली कहानी है। विज्ञान सभा जिसका निर्माण गणित और तर्कशास्त्र, देश और काल, पिंड और कारणता की नींव पर हुआ था, वह टूटकर बिखर चुकी है। गणित की नींव को धक्का लगा। तर्कशास्त्र और विचार की नींव को धक्का लगा। सारी ही नींवों को धक्का लग चुका है। बोध की धारणा और इन नीवों को हम नकार चुके हैं। हम इस दुनिया में, विचार के क्षेत्र में, ज्ञान के क्षेत्र में और मूल्यों के क्षेत्र में अब पूर्णत: असुरक्षित रहेंगे।

क्या अच्छा है, क्या बुरा है सौंदर्य के क्षेत्र में भी? उन्होंने सौन्दर्य और कला की धारणा के खिलाफ़ भी विद्रोह कर दिया। ये अविश्वसनीय है। यदि हम सौन्दर्य की बात कला, साहित्य, पेन्टिंग के संदर्भ में करते हैं तो हमें पुरातन विचारों वाला बेवकूफ़ समझा जाता है। पश्चिम के सौ सालों ने मनुष्य द्वारा सृजित सभी चीज़ों को, मानव सभ्यता को नष्ट कर दिया। जो कुछ भी मानव ने 5000 वर्षों में सृजित किया, यदि हम 3000 ई.पू. मानव सभ्यता की शुरुआत मानें तो?

हम ऐसे बिंदु पर खड़े हैं जहाँ हर चीज़ सवालों के घेरे में है। यदि हर चीज़ सवालों के घेरे में है तो सवाल ही खड़े नहीं होते। लेकिन सवाल ये खड़ा होता है कि क्या कोई विधि है जिसके ज़रिए उठाए जा रहे सवालों के बारे में फ़ैसला किया जा सके? पश्चिम के कई विचारक, युक्ति या तर्क की नहीं बल्कि वार्तालाप की बात करते हैं। कुछ भी तय नहीं हो सकता क्योंकि तय कैसे करें? मानदण्ड कहाँ है, मानक क्या है? वो कहाँ है, जो कि माप सकता है? हमारे युवा और युवतियां बड़े हो रहे हैं न सिर्फ़ यहाँ बल्कि पश्चिम में भी। पश्चिम में तो ये चीज़ और भी परेशान करने वाली हैं जहाँ मानवता का पूरा इतिहास न सिर्फ़ विवादास्पद हो रहा है बल्कि अप्रासंगिक भी माना जा रहा है। उपनिषद और शंकर को ही नहीं, प्लूटो, अरस्तु, कांट, हेगेल और सभी अन्य; पूर्णत: अप्रासंगिक माने जा रहे हैं। इस परिस्थिति में हम क्या करें? मेरी सलाह में विवाद या फ़र्क जो भी हो, लेकिन है, और हम उससे पीछा नहीं छुड़ा सकते। हो सकता है कि मुझे पता नहीं हो कि 'अच्छा' क्या है। मैं इसे वस्तुनिष्ठ तरीके से स्थापित न भी कर पाऊँ, लेकिन फ़र्क है और वह अप्रासंगिक नहीं है। सत्य और असत्य के बीच में फ़र्क है और इससे इंकार नहीं किया जा रहा है। जिससे इंकार किया जा रहा है वह यह है कि इसे स्थापित कैसे किया जाए कि कोई चीज़ सत्य है या असत्य। उसी तरह से इस फ़र्क को सुन्दर कहें या नीतिगत रूप से मान्य। कला की श्रेणी एक श्रेणी ही कैसे है? अच्छी कला, बुरी कला। बेहतर चिंतकों में से कोई नहीं कहेगा कि सब चलता है, आपको अस्वीकृत करना ही पड़ेगा। गुणात्मक भेद रहेंगे।

जहाँ तक मैं जानता हूँ कोई यह नहीं कहता है कि सब न्यायपूर्ण है, अन्याय जैसी कोई चीज़ नहीं है, बहुलता जैसी कोई चीज़ नहीं है। सामान्यत: लोग एक ऐसी दुनियाँ बनाना चाहते हैं जो न्यायपूर्ण है, जहाँ असमानताएँ कम हैं। इस विरोधाभास की कल्पना करिए। यह एक विचित्र विरोधाभास है कि फ़र्क हैं और तब तक रहेंगे जब तक कि मैं आत्म-चेतना न खो बैठूँ।

यहाँ बैठे दोस्तों को मेरी सलाह है, कभी हम अनौपचारिक रूप से चर्चा कर सकते हैं कि हमें फ़र्क की इस अनुल्लंघनीयता, अप्राप्यता और अपरिहार्यता पर ज़ोर देना है और अन्तत: हमें नये रास्ते पर जाना है। यह नया रास्ता मतारोपण का नहीं होगा, हो भी नहीं सकता। मैं अपने विद्यार्थियों को यह नहीं कह सकता कि यही सत्य का पैटर्न है। लेकिन मैं उन्हें यह बता सकता हूँ इनमें फ़र्क है। और उन्हें ये बता सकता हूँ कि वे इस फ़र्क के लिए अपने अन्दर क्षमता पैदा कर सकते हैं; संवेदनशीलता पैदा कर सकते हैं। चिन्तन और अभ्यास के स्व:प्रयत्न के ज़रिए इसमें सुधार ला सकते हैं।

अभ्यास और वैराग्य को देखिए। यह वैराग्य शब्द गीता से लिया गया है। अर्जुन ने कृष्ण से कुछ पूछा कि ये कैसे किया जा सकता है? उन्होंने कहा, ''सिर्फ़ एक तरीका है – सतत अभ्यास। लेकिन वैराग्य का क्या मतलब है? वैराग्य का मतलब है – आत्मनिष्ठ स्वार्थों और पूर्वाग्रहों को एक तरफ़ रखना।'' सामान्य तौर पर वैराग्य का जो अर्थ बताया जाता है वह नहीं है। वैराग्य का अर्थ है कोई राग या द्वैष नहीं हो। राग या द्वेष का न होना क्या है? इसका मतलब है आत्मनिष्ठ स्वार्थों को अलग रखना। जहाँ तक संभव हो वस्तुनिष्ठ होने की कोशिश करना और आपकी चेतना विकसित होगी। ये चेतना का विकास क्या है? ये जो फ़र्क है यह तलवार की धार की तरह है जैसा कि मेरे एक मित्र ने लिखा था, मुझे अभी भी याद है, चेतना तलवार की धार पर चलती है। वह फ़र्क करती है पर तलवार की धार अब अधिक पैनी और अधिक सटीक हो गई है। सत्य और असत्य की धारणाएँ बदलती हैं। लेकिन फ़र्क नहीं बदलता। सभी के प्रति संवेदनशीलता, न केवल मानवीय पीड़ा के प्रति बल्कि सकारात्मक परिवर्तन के प्रति भी संवेदनशीलता, प्रशंसा करने की क्षमता और आनन्द को समझना। विश्व में सृजन के प्रति संवेदनशीलता–जब मैं सड़क पर जाता हूँ मुझे इमारतें दिखती हैं और इनमें से कुछ इमारतें बहुत खूबसूरत और अच्छी बनी हुई हैं। बाहर ये पेड़ हैं इन्हें देखिए। अभी मैं ये देख रहा था कि बाहर मौसम कितना अच्छा है। क्या ये पिकनिक मनाने का समय नहीं है? ये किसी व्याख्यान का समय तो नहीं है। लेकिन हमें ऐसे आयोजन करने होते हैं। अब मौसम के प्रति संवेदनशीलता क्या है? आसमान के प्रति, फूलों के प्रति, सभी के प्रति, मनुष्य के प्रति संवेदनशीलता क्या है? पेड़ों के प्रति संवेदनशीलता क्या है? किसी मुस्कुराते बच्चे के चेहरे के प्रति संवेदनशीलता क्या है। मैं सभी चीज़ों से सीख सकता हूँ और आप भी सीख सकते हैं। मैं अन्तत: यह कहूँगा कि सीखना जीवन की कला है। जीवन को सार्थक बनाने की कला है। न सिर्फ़ अपने लिए बल्कि दूसरों के लिए भी, और इन दूसरों में उम्र का बहुत फ़र्क हो सकता है, क्षमताओं का फ़र्क हो सकता है और उनका अनन्त रूप अलग है।

आपको प्राकृतिक रूप से न कि कृत्रिम रूप से अपने आपको समायोजित करना है। दूसरों की अन्यता देखकर कोई दूसरा अपने जीवन को सार्थक बना रहा है। कम–से–कम इसके लिए जितना भी ज़्यादा आप करें उतना ही अच्छा है। दुनिया में रहते हुए दुनिया के बाहर रहते हुए। मृत्यु के सम्मुख रहते हुए, क्या मृत्यु सार्थक हो सकती है? क्या वृद्धावस्था को सार्थक बनाया जा सकता है? क्या किसी बच्चे के बड़े होने को सार्थक बनाया जा सकता है? बच्चों और युवाओं के बीच में कैसा संबंध होना चाहिए? महिलाओं और पुरुषों के बीच, लड़के और लड़कियों के बीच कैसा संबंध होना चाहिए? हम एक सार्थक विश्व का सृजन कर सकते हैं। मैं यह कहते हुए अपनी बात को समेटना चाहूँगा कि शिक्षा, जैसे कि मैं देखता हूँ, जीवन के लिए है, जीने के लिए है, सार्थक रूप से जीने के लिए है। बाकी सब के साथ, मैं अपनी बात का एक भिन्न दिशा में अंत करूंगा कि अनन्त मूल्यों की खोज में जीना जीवन को सार्थक बनाता है। क्योंकि हम सिर्फ़ जीते ही नहीं हैं बल्कि समय में जीते हैं और समय को कैसे सार्थक बनाया जाए? कला की खोज में, किसी भी चीज़ की खोज एक आदर्श स्थिति है। फिर चाहे आप सौ साल जिएँ या हज़ार साल। क्या हम अभी भी खोजने की कोशिश करते हैं, समझने की कोशिश करते हैं? मैं अब भी पाता हूँ कि किताबें मुझे चुनौती देती हैं, एक बार फिर सोचने के लिए। तो कार्य बहुत लंबा है लेकिन चुनौतीपूर्ण है, मधुर और अच्छा है।